बुद्धिपूर्वक व अबुद्धिपूर्वक राग

देखो ! अन्तर्दृष्टि की महिमा ! ज्ञानी के अन्तदृष्टि हो जाने से उसने समस्त राग को हेय जान लिया है; अत: अब उसे पुण्य-परिणाम की भावना का भी (अभिप्राय में) आदर नहीं रहा। उसे तो सिर्फ एक वीतरागभाव की भावना का ही सदा (अभिप्राय में) आदरभाव वर्तता है, इसकारण वह सदा निरास्रव ही है।

ज्ञानी के अश्रद्धानरूप परपरिणति तो सर्वथा छूट ही गई है तथा अस्थिरतारूप परप्रवृत्ति के जीतने में भी वह सदा प्रयत्नशील रहता है; इसके लिये वह बारम्बार निजशक्ति का स्पर्श करता है। अपनी परिणति को बारम्बार स्वरूप के प्रति झुकाने का प्रयत्न करता रहता है। मुनिदशा का तो कहना ही क्या ? वे तो हर अन्तर्मुहूर्त में निजस्वरूप में डुबकियाँ लगाया ही करते हैं ह्न इसप्रकार ज्ञानी सम्पूर्ण उत्कृष्ट स्थिरता करके केवलज्ञान प्रगट करते हैं।

'बुद्धिपूर्वक व अबुद्धिपूर्वक' का अर्थ यह है कि जो रागादि परिणाम इच्छा सहित होता है, वह बुद्धिपूर्वक है तथा जो रागादि परिणाम इच्छा के बिना परनिमित्त की बलजोरी से होता है, वह अबुद्धिपूर्वक है। परनिमित्त की बलजोरी अर्थात् स्वयं की इच्छा बिना परनिमित्त के लक्ष्य से जो राग होता है, उसे पर की बलजोरी से हुआ कहा जाता है। वस्तुत: निमित्त की बलजोरी नहीं है, बल्कि अपने हीन पुरुषार्थ का क्रम ही ऐसा है तथा उससमय राग होने का क्रम भी ऐसा ही है, तथापि संयोगरूप निमित्त में कर्म या परपदार्थ की अपेक्षा से कथन करने पर निमित्त की बलजोरी से हुआ ह्न ऐसा कथन करने की रीति है। निमित्त बलपूर्वक पर में कुछ अनहोना परिणमन या फेरफार नहीं कराता।

ज्ञानी को जो रागादि परिणाम होते हैं, वे सब अबुद्धिपूर्वक ही होते हैं। यद्यपि सविकल्पदशा में रहते हुये वे रागादि परिणाम ज्ञानी के ज्ञान में हैं, तथापि वे अबुद्धिपूर्वक हैं; क्योंकि वे बिना इच्छा के हुये हैं। ज्ञानी को राग की रुचि नहीं है, राग ठीक है ह्न ऐसी मान्यता भी नहीं हैं तो भी राग तो होता ही है, उसे ही अबुद्धिपूर्वक कहा जाता है। **ह्न प्रवचनरत्नाकर भाग-5, पृष्ठ : 295**

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : २४ २७५ अंक : ११

प्रवचनसार पद्यानुवाद

आचरणप्रज्ञापनाधिकार

हो गमन ईर्यासमिति से पर पैर के संयोग से।
हों जीव बाधित या मरण हो फिर भी उनके योग से ।।१५।।•
ना बंध हो उस निमित से ऐसा कहा जिनशास्त्र में।
क्योंकि मूर्च्छा परिग्रह अध्यात्म के आधार में।।१६।।युग्मम्।।•
जलकमलवत निर्लेप हैं जो रहें यत्नाचार से।
पर अयत्नाचारि तो षट्काय के हिंसक कहे।।२१८।।
बंध हो या न भी हो जिय मरे तन की क्रिया से।
पर परिग्रह से बंध हो बस उसे छोड़े श्रमणजन।।२१९।।
यदि भिक्षु के निरपेक्ष न हो त्याग तो शुद्धि न हो।
तो कर्मक्षय हो किसतरह अविशुद्ध भावों से कहो।।२२०।।
वस्त्र बर्तन यति रखें यदि यह किसी के सूत्र में।
ही कहा हो तो बताओ यति निरारंभी किसतरह।।१७।।•
रे बस्त्र बर्तन आदि को जो ग्रहण करता है श्रमण।
नित चित्त में विक्षेप प्राणारंभ नित उसके रहे।।१८।।•
यदि वस्त्र बर्तन ग्रहे धोवे सुखावे रक्षा करे।
खो न जावे डर सतावे सतत ही उस श्रमण को।।१९।।•

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथायें ह्न १५ से १९ **ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

अन्य वस्तु निमित्तमात्र है

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 35 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ।।35।।

जो पुरुष अज्ञानी अर्थात् तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति के लिये अयोग्य है, वह विज्ञ (ज्ञानी) नहीं हो सकता और जो विशेष ज्ञानी है वह अज्ञानी नहीं हो सकता।

जिसप्रकार जीव-पुद्गल की गति में धर्मास्तिकाय निमित्तमात्र है; उसीप्रकार अन्य पदार्थ भी निमित्तमात्र हैं।

(गतांक से आगे...)

दो परमाणुओं में से एक परमाणु की पर्याय काली और दूसरे परमाणु की पर्याय पीली हो तो उसमें कारण कौन है ?

द्रव्य-गुण तो दोनों परमाणुओं में समान हैं; किन्तु पर्याय भिन्न-भिन्न है, इसलिये पर्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य नहीं, बल्कि उसकी अपनी वर्तमान योग्यता ही उसका कारण है।

जिसे पर्याय की ऐसी स्वंतत्रदृष्टि ख्याल में आई, उसे आत्मा के त्रिकाल आनन्दस्वरूप का भान होकर पर्याय में भी आनन्द प्रगट हो जाता है।

यह बातें सिर्फ कहने के लिये नहीं है; अपितु वास्तविकता यह है कि सिद्धान्त की एक-एक बात में से वीतरागता झलकती है। **मेरा द्रव्य स्वतंत्र है** ह्न ऐसे सच्चे निर्णयपूर्वक स्वसन्मुखता होती है। आनन्द का अनुभव, स्वतंत्रता का स्वरूप भी इसी से ख्याल में आता है। यह पंचमकाल मुझे बाधक है, कर्म संसार में अटकाते हैं, पूर्व के विपरीत संस्कार बाधा करते हैं ह्न ऐसी कोई भी बात फिर नहीं रहती।

यदि आत्मा अपनी सामर्थ्यपूर्वक स्व-स्वरूप की निर्विकारी श्रद्धा, ज्ञान और शांति प्रगट करने के लिये तैयार हो तो राग, व्यवहार अथवा संयोगादिक उसे

रोकने में समर्थ नहीं है। आत्मा अपने स्वभाव की दृष्टिपूर्वक पर्याय में अपना कार्य प्रगट कर सकता है। उसमें व्यवहार, दया, दानादि का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। व्यवहार, निश्चय में क्या कर सकता है ?

अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि होते ही शरीर, पुण्य परिणाम, विषय-भोग, मंदकषाय आदि से शांति प्राप्त करने की बुद्धि छूट जाती है। उपादान का कार्य उपादान से ही होता है, निमित्त उसमें कुछ फेरफार नहीं कर सकता; इसीलिये अज्ञानी को कोई ज्ञानी नहीं बना सकता और ज्ञानी को कोई अज्ञानी नहीं बना सकता।

तीनलोक और तीनकाल में प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी पर्यायरूप परिणमन कर रहा है, उसमें अन्य कोई पदार्थ मददगार नहीं हैं ह्न ऐसा निश्चय प्रगट करनेवाले को व्यवहार आये बिना नहीं रहता। इसीलिये उसे धर्म प्रगट होने में निमित्तभूत गुरु, भगवान की प्रतिमा अथवा साधर्मी आदि के प्रति बहुमान - विनय का भाव भी आता है; अत: व्यवहार से गुरु आदि की सेवा करनेयोग्य है।

इसप्रकार शिष्य को यह बात ख्याल में आ गई कि पर से मेरा कार्य नहीं होता; बल्कि मेरा कार्य तो मुझसे ही होता है।

यहाँ शिष्य कहता है कि महाराज ! आपने तो निमित्त को उड़ाकर सारी जिम्मेदारी हमारे ऊपर ही डाल दी; अत: अब यह भी बताइये कि धर्म प्रगट करने अथवा अपने आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को पहिचानने, उसमें एकाग्र होने के लिये हमें किस रीति से अभ्यास करना चाहिये? आत्मध्यान कैसे करना चाहिये? इसका क्या उपाय है? इसके लिये कोई नियम है या नहीं ? आत्मध्यान के लिये स्थानादि कैसे होने चाहिये ?

शिष्य के उक्त प्रश्नों का जवाब आचार्य पूज्यपादस्वामी आगामी गाथा में विस्तार से देंगे। उसके पूर्व शिष्य को समझाते हुये कहते हैं कि हे जीव ! तू अपने स्वरूप का बारंबार चिंतवन कर ! मेरा आत्मा शरीरादि, रागादि विकल्पों से भिन्न है, वह एक समय की प्रगट पर्याय जितना भी नहीं है ह्न ऐसा जानकर उसे पूर्ण लक्ष्य में ले ! उसका ही अभ्यास कर !

अब सर्वप्रथम अभ्यास की व्याख्या करते हुये वे स्वयं कहते हैं कि एक ही

विषय में बारंबार प्रवृत्ति करना, चिंतन करना ही अभ्यास है और इस जगत में अभ्यास करनेयोग्य एकमात्र हमारा आत्मा ही है; अत: संसार की समस्त बातों को छोड़कर एकमात्र ध्यान देने योग्य बात यही है कि ' मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, मैं मात्र ज्ञायक हूँ।' इसप्रकार आत्मस्वरूप को लक्ष्य में लेकर उसका ही निरंतर अभ्यास करना चाहिये। इसी अभ्यास की चर्चा आगामी गाथा में करते हैं ह्न

अभवच्चित्तविक्षेप एकांते तत्त्वसंस्थित:।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मन: ।।36 ।।

जिसके चित्त में राग-द्वेषादि विकारी परिणतिरूप क्षोभ-विक्षेप नहीं है तथा जो आत्मस्वरूप में भलेप्रकार स्थित है ह्न ऐसे योगी को सावधानीपूर्वक अर्थात् आलस्य आदि के परित्यागपूर्वक एकान्त स्थान में अपने आत्मतत्त्व का अभ्यास करना चाहिये।

प्रथमत: अभ्यास करनेवाले के चित्त में क्षोभ नहीं होना चाहिये। 'यह किया..., यह किया..., यह करना बाकी रह गया' ह्न इसप्रकार अभ्यासी जीव के चित्त में विकल्पों का क्षोभ रहेगा तो वह आत्मा का अभ्यास कैसे करेगा ? अर्थात् इसप्रकार आत्मा का अभ्यास नहीं होता।

जब रागादि क्षोभ रहित शुद्ध-चिदानन्द आत्मस्वरूप में स्थिति होती है, तब योगी सावधानीपूर्वक एकांत स्थान में अपने आत्मस्वरूप का अभ्यास करता है।

भाई ! यह तो अन्तर की बात है। इसमें भी बहुत सूक्ष्म रीति से समझाया है। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ ह्न ऐसे निश्चयपूर्वक रागादि-विकल्पोंरूपी क्षोभ से रहित होता हुआ अपने स्वस्वरूप में स्थित होनेवाला योगी सावधानीपूर्वक एकांत स्थान में अपनी आत्मा का अभ्यास करता है।

एकांत स्थान का तात्पर्य बाहर में कोलाहल रहित एवं अन्तर में रागादि विकल्पों से रहित एकान्त से है। वहीं आत्मा का अभ्यास हो सकता है। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा में स्थित होने का प्रयत्न करना ही अभ्यास है और ऐसे अभ्यास के उपदेश को ही इष्ट उपदेश कहते हैं, इसी में जीव का हित है।

जिसे आत्मा को छोड़कर जगत में अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता तथा जिसे ऐसी प्रबल भावना वर्तती है कि मुझे तो सिर्फ एक आत्मा का ही अनुभव

करना है ह्न उसकी यह बात है।

जिसके चित्त में क्षोभ हो, वह आत्मा का अभ्यास नहीं कर सकता; अत: सर्वप्रथम ऐसी दृढ़ता होना चाहिये कि मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ।

अखण्ड, आनन्दस्वरूप, चैतन्यसूर्य आत्मा में दृष्टि स्थिर करके आत्मा का स्वीकार होना चाहिये। जिसे स्त्री-पुत्र, धन, भोगसामग्री आदि में सुखदृष्टि है; उसे नियम से आत्मदृष्टि नहीं है। परपदार्थों की अनुकूलता में सुख और प्रतिकूलता में दु:ख माननेवाले जीव को स्वभाव के आनन्द की खबर ही नहीं है।

शरीर निरोग हो तो मुझे सुख होगा ह्न ऐसी मान्यता में चित्त का क्षोभ है, बुद्धि का विपरीतपना है। साधु बनकर भी जिसे बाहर की अनुकूलता चाहिये, अच्छे शिष्य चाहिये, ध्यान लगाने के लिये कूलर की ठंडी हवा चाहिये ह्न वे जीव विपरीत दृष्टिवाले है। वे आत्मा का अभ्यास नहीं कर सकते; अत: जिसके चित्त में क्षोभ और दृष्टि में विपरीतता नही है, वे ही अपने स्वभाव को साध सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

आत्मा के स्वरूप का अभ्यास करने के लिये बाहर के कोलाहल से रहित और अन्तर-विकल्पों से रहित एकांत स्थान चाहिये। वहीं योगीजन सावधानीपूर्वक आत्म-अभ्यास करते हैं।

यहाँ लौकिक अभ्यास या शास्त्राभ्यास की बात नहीं है। यहाँ तो जिसके फल में केवलज्ञान प्रकट होता है, उस ज्ञानस्वरूप आत्मा के अभ्यास की बात है।

हमें यह दृढ विश्वास होना चाहिये कि मैं केवलज्ञान का कंद हूँ तथा अपने स्वरूप में एकाग्रता का अभ्यास करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ। केवलज्ञान प्राप्त करने हेतु इस पूरी दुनिया में आत्माभ्यास के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। **(क्रमश:)**

परमात्मा बन जाते हैं

सभी आत्मा स्वयं परमात्मा हैं, परमात्मा कोई अलग नहीं होते। स्वभाव से तो सभी आत्मायें स्वयं परमात्मा ही हैं, पर अपने परमात्मस्वभाव को भूल जाने के कारण दीन-हीन बन रहे हैं। जो अपने को जानते हैं, पहिचानते हैं और अपने में ही जम जाते हैं, रम जाते हैं, समा जाते हैं; वे पर्याय में भी परमात्मा बन जाते हैं। **ह्न आप कुछ भी कहो, पृष्ठ : 13**

स्वभावदर्शन और विभावदर्शन

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की 13-14 वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथायें मूलत: इसप्रकार है ह्न

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो ।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं ॥13॥
चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि विभणिदं विहावदिट्ठि त्ति ।
पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो ॥14॥

ज्ञानोपयोग के समान दर्शनोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद से दो प्रकार का है, जो केवल इन्द्रियरहित और असहाय है। वह केवलदर्शन स्वभाव दर्शनोपयोग है।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन विभावदर्शन कहे गये हैं। पर्याय दो प्रकार की है। स्वपरापेक्ष और निरपेक्ष।

(गतांक से आगे...)

उपयोग का व्याख्यान करने के पश्चात् अब यहाँ पर्याय का स्वरूप कहते हैं ह्न **परिसमन्तात् भेदमिति गच्छतीति पर्याय:** अर्थात् जो सब ओर से भेद को प्राप्त करे सो पर्याय है। शुद्धकारणपर्याय के लिये भी यही व्याख्या लागू होगी; किन्तु उसे पर्याय कहा जाने पर भी वह है तो द्रव्यार्थिकनय का विषय ही। यहाँ त्रिकाली सामान्य में वर्तमान विशेषरूप भेद पड़ा है, इसलिये उसे भी पर्याय कहा है; परन्तु वह पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है।

पर्याय का ग्रहण कहा, उसमें स्वभाव पर्याय छहों द्रव्यों में साधारण है, अर्थपर्याय है, वाणी और मन को अगोचर है, अतिसूक्ष्म है, आगमप्रमाण से स्वीकार करने योग्य है तथा षट्हानिवृद्धि के भेदों सहित है अर्थात् अनंतभाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि, संख्यातगुण वृद्धि, असंख्यातगुण वृद्धि और अनंतगुण

वृद्धि सहित होती है। इसप्रकार वृद्धि की तरह हानि पर भी घटित कर लेना चाहिये। यह निरपेक्षस्वभाव अर्थपर्याय छहों द्रव्यों में सूक्ष्म आगम प्रमाणरूप है।

अशुद्धपर्याय नर-नारकादि व्यंजनपर्याय है। इसमें स्व-पर की अपेक्षा होती है; अत: वह निरपेक्षपर्याय नहीं है; अपितु स्वपरापेक्ष विभावव्यंजनपर्याय है। व्यंजनपर्याय में शुद्धपर्याय ग्रहण नहीं की जाती ह्न ऐसी ही इस टीका की शैली है।

अब चौदहवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुये टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं ह्न

अथ सति परभावे शुद्धमात्मानमेकं,
सहज गुणमणीनामाकरं पूर्णबोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्य: पुमान् शुद्धदृष्टि:,
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप: ।।24।।

परभाव होने पर भी सहज गुणमणी की खानरूप और पूर्णज्ञानवाले शुद्धात्मा को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी (मुक्ति सुन्दरी) का वल्लभ बनता है।

आत्मा को कैसे भजना चाहिये ? उसकी प्रशंसा करते हुये आचार्य कहते हैं कि अहो ! आत्मा की पर्याय में रागादि अशुद्ध परभाव होने पर भी वह त्रिकाल स्वाभाविक गुण-मणी की खान है, पूर्णज्ञानवाला है ह्न ऐसे शुद्धात्मा को एकरूप तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है।

तीक्ष्णबुद्धि उसे कहते हैं जो ज्ञान को अन्तर्मुख करके त्रिकालशुद्ध चिदानन्द आत्मा में एकाग्र होकर उसको भजता है। वही पुरुष मोक्षदशा को प्राप्त करता है। यहाँ शुद्धस्वभावरूपी मुक्ति परिणति को स्त्री की उपमा दी है। अरे आत्मा ! चर्म की स्त्री का वल्लभ होने की अपेक्षा चैतन्य की भावना करके इस मुक्तिरूपी स्त्री का वल्लभ बन जावे तो उस मुक्ति का सादि-अनंत काल तक वियोग नहीं होगा। तीक्ष्णबुद्धि से त्रिकाल चैतन्यस्वभाव में एकाग्र होने पर जो मोक्षपर्याय प्रकट होती है, उसका कभी विरह नहीं होता। इन्द्र को तो इन्द्राणी का विरह हो जाता है; किन्तु आत्मा को मुक्ति-सुन्दरी का विरह कभी नहीं होता।

जिससमय यह टीका रची गई थी, उससमय अनेक राजा लोग स्त्री के कारण परस्पर युद्ध कर-करके मरते थे; अत: यहाँ टीकाकार ने सहजपने मुक्ति को सुन्दर स्त्री की उपमा देकर वर्णन किया है।

अरे जीव ! तू बाहर की स्त्री के लिये मरता है, अन्तर में अपने चैतन्य का आश्रय करके मुक्तिरूपी सुन्दरी का वल्लभ क्यों नहीं बन जाता ? इससे तुझे सादि-अनंत सुख का भोग होता रहेगा और कभी भी विरह नहीं होगा। जगत की स्त्री का तो वियोग होता ही है और फिर अनंत काल तक स्त्री का संयोग न भी मिले; परन्तु इस मुक्तिरूपी स्त्री का सादि-अनंत काल में कभी भी वियोग नहीं हो सकता।

जगत की स्त्री में सुख नहीं; अत: उसकी रुचि छोड़ और इस मुक्तिरमणी का भरतार बन जा। जो जीव त्रिकाली चिदानन्दस्वभाव की भावना करते हैं, वे जीव मुक्ति सुन्दरी के वल्लभ अवश्य हो जाते हैं।

इति परगुणपर्यायेषु सत्सूत्तमानां,
हृदय सरसिजाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्मरूपं,
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल सत्वम् ।।25।।

इसप्रकार परगुण पर्याय होने पर भी उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में कारण आत्मा विराजमान है। अपने से उत्पन्न ऐसे उस परम ब्रह्मरूप समयसार को ह्न कि जिसे तू भज रहा है, उसको हे भव्य शार्दूल (भव्योत्तम) तू शीघ्र भज; क्योंकि तू वही है।

मतिज्ञानादि विभावगुण, चक्षुदर्शनादि विभावगुण और रागादि परभाव ह्न ऐसे परगुणपर्याय होने पर भी साधक उत्तम पुरुषों की दृष्टि में तो भगवान कारणपरमात्मा विराजता है, त्रिकाल कारण परमात्मा के ऊपर ही दृष्टि पड़ी है अर्थात् साधक के हृदयकमल में कारण परमात्मा ही विराजमान है और पर्याय में परभाव भी है, किन्तु उनके ऊपर दृष्टि नहीं है।

इसप्रकार यहाँ साधकजीव की बात की है। जिसकी दृष्टि में कारणपरमात्मा विराजता है, वही वास्तव में उत्तम पुरुष है। निज से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को हे भव्य शार्दूल तू शीघ्र भज। **(क्रमश:)**

छहढाला प्रवचन

श्रीगुरु का जीवों को सुखकर उपदेश

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःखतें भयवन्त।
तातैं दुःखहारी सुखकार, कहें सीख गुरु करुणाधार।।१।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

जगत के जीव दुःख से भयभीत हैं और सुख को चाहते हैं; अतः श्रीगुरुओं ने करुणा करके ऐसा उपदेश दिया है कि जिसके द्वारा दुःख मिटे व सुख प्रगटे।

यहाँ दौलतरामजी कहते हैं कि श्रीगुरु ने शास्त्र में जो हितोपदेश दिया है, उसी के अनुसार इस छहढाला में कथन करेंगे ह्न

तीनलोक में वीतराग-विज्ञान सार है ह्न यह दिखाकर, अब उस वीतराग-विज्ञान प्रगट करने का उपदेश देते हैं। तीनलोक में जो अनन्त जीव हैं, वे सब सुख को चाहते हैं और दुःख से डरते हैं; अतः उनको कैसे सुख होवे व कैसे दुःख मिटे ह्न ऐसा मोक्षमार्ग का हितकारी उपदेश करुणावन्त श्रीगुरु देते हैं।

मोक्षमार्ग कहो, रत्नत्रय कहो या वीतराग-विज्ञान कहो ह्न इसके ही द्वारा जीवों को सुख होता है व दुःख मिटता है; इसलिये ज्ञानी-गुरुओं ने करुणा करके जीवों को उसकी सीख दी है, उसका उपदेश दिया है। ऐसा उपदेश समझकर सच्चा उपाय करने से दुःख का नाश होकर सुख का अनुभव होता है।

अरे, अज्ञानभाव से जीव चार गति के दुःखों में विलख रहा है। ज्ञानी भी पूर्व की अज्ञानदशा में ऐसे दुःख भोग चुके हैं एवं आत्मा का सच्चा सुख भी उन्होंने चख लिया है; अतः उन्हें जगत के जीवों के ऊपर प्रशस्त करुणा आती है कि अरे! अज्ञान के इन घोर दुःखों से जीव कैसे छूटें और सच्चा आत्मसुख कैसे पावें? ऐसी करुणा से, दुःख का कारण जो मिथ्यात्व उसे छोड़ने का और सुख के कारण ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अंगीकार करने का उपदेश दिया है। यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो हे जीव! इस उपदेश को स्थिर मन से सुन ह्न ऐसा दूसरी गाथा में कहेंगे।

देखो तो सही, सन्तों को कितनी करुणा है। प्रवचनसार में भी कहते हैं कि 'परम आनन्दरूप सुधारस के पिपासु भव्यजीवों के हित के लिए .. यह टीका की जाती है।' अतीन्द्रिय आनन्दरस की जिसे तरस लगी है ह्न ऐसे जीव को उस अतीन्द्रिय आनन्दरस का स्वरूप समझाते हैं कि जिसको समझते ही अपूर्व आनन्द सहित सम्यग्दर्शन हो।

परमात्मप्रकाश की उत्थानिका में भी शिष्य प्रभाकर श्रीगुरु से विनती करता है कि हे स्वामिन्! इस संसार में भ्रमण करते हुये मेरा अनन्त काल बीत चुका, किन्तु मुझे सुख नहीं मिला, बल्कि महान दुःख ही मिला। उत्तम कुल आदि सामग्री अनंतबार प्राप्त हुई, स्वर्गादि में भी गया; फिर भी मुझे सुख न मिला। वीतरागी परमानंद सुख का स्वाद मैंने कभी न चखा; अतः अपने भाव निर्मल करके शिष्य प्रार्थना करता है कि हे गुरु! इन चार गतियों के दुःखों से संतप्त मुझे आप प्रसन्न होकर ऐसा कोई परमात्मतत्त्व बताओ कि जिसके जानने से दुःख का नाश हो और आनन्द प्रगट हो।

तब श्रीगुरु कहते हैं कि आत्मा का ऐसा स्वरूप मैं तुझे कहता हूँ, उसे तू सुन ! इसप्रकार जो जीव अन्तर में तीव्र जिज्ञासु होकर आया, उसके लिए यह हित का उपदेश है।

चार गति में सब मिलके अनन्त जीव हैं। मनुष्य गति में असंख्यात हैं, नरक में असंख्यात हैं, देवलोक में असंख्यात हैं और तिर्यंच में अनन्त हैं। तिर्यंच में दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव तो असंख्यात ही हैं, किन्तु एकेन्द्रिय जीव अनन्त हैं। ये सब जीव मिथ्यात्व के कारण महादुःखी हैं। वे सब जीव दुःख से तो भयभीत हैं और सुख को ही चाहते हैं; परन्तु कहाँ है वह सुख व कैसे प्रगटे वह? ह्न इसका उपाय वे नहीं जानते। क्यों दुःख है? और कैसे टले वह? इसकी उनको खबर नहीं। इसलिये सुख के हेतु वे बाहर प्रयत्न कर रहे हैं; किन्तु बाहर के उपाय से उनका दुःख मिटता नहीं और उन्हें सुख होता नहीं। अतः उन जीवों के ऊपर करुणा करके दुःख से छूटने का उपाय सन्तों ने दिखलाया है। हे जीव! तेरा मिथ्यात्वभाव ही तुझे दुःख देनेवाला है, अतः तू तेरी ही भूल से दुःखी है; सच्चे भेदज्ञान के द्वारा उस भूल को मिटा दे और सम्यक्त्वादि प्रगट कर ह्न यही सुखी होने का उपाय है। 'रे जीव ! तेरे दोष से तुझे बंधन है, यह सन्त की पहली शिक्षा है। तेरा दोष मात्र इतना ही है कि पर को अपना मानना और अपने आपको भूल जाना' **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : पुरुषार्थ करना हमारे हाथ में है या क्रमबद्ध में हो तब होता है।

उत्तर : पुरुषार्थ करना अपने हाथ की बात है और क्रमबद्ध का निर्णय भी पुरुषार्थ के आधीन है। स्वसन्मुख पुरुषार्थपूर्वक ही क्रमबद्ध का निर्णय होता है।

प्रश्न : जिसे पुरुषार्थ नहीं करना है ह्न ऐसा जीव क्रमबद्ध में जो होना होगा, सो होगा ह्न ऐसा मानकर प्रमाद में पड़ा रहेगा और पुरुषार्थहीन हो जायेगा ?

उत्तर : अरे भाई ! क्रमबद्ध के निर्णय में अकर्त्तावाद का अनंत पुरुषार्थ होता है। अनंत पुरुषार्थ हुये बिना क्रमबद्ध माना नहीं जा सकता। क्रमबद्ध का सिद्धांत ही ऐसा है कि सारे विरोधों का अभाव हो जाता है। क्रमबद्ध में ज्ञातापने का, अकर्त्तापने का पुरुषार्थ है। राग को बदलना तो नहीं, किन्तु पर्याय को भी करना या बदलना नहीं है, बस जाने..जाने.. और जाने..।

समयसार गाथा-३२० में कहा है कि जीव बंध-मोक्ष को भी करता नहीं, जानता ही है। क्रमबद्ध के निर्णायक का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर है। द्रव्य के ऊपर लक्ष्यवाला ज्ञाता है, उसको क्रमबद्ध के काल में रागादि आते हैं, किन्तु उनके ऊपर लक्ष्य नहीं है; अत: वह रागादि का जाननेवाला ही है।

एक क्रमबद्ध को समझे तो सब निर्णय स्पष्ट हो जाये। निमित्त से होता नहीं, पर्याय आगे-पीछे होती नहीं और हुये बिना भी रहती नहीं। अपनी पर्याय के भी अकर्ता बन जाओ। क्रमबद्ध का तात्पर्य वीतरागता है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि जब मोक्षप्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है या मोक्ष की पर्याय जब प्राप्त होनी हो तब सहजरूप से स्वयं प्राप्त होती है ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में अनेकान्त है। सम्यग्दृष्टि जब मोक्षप्राप्ति का पुरुषार्थ करता है, तब ही मोक्ष प्राप्त होता है तथा तब ही मोक्षपर्याय प्राप्त होनी होती है; अत: मोक्ष प्राप्ति सहज हो जाती है। सम्यग्दृष्टि तो द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि करता है अर्थात् वास्तव में जब द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होती है, तब सहजरूप से मोक्ष प्राप्ति होनी होती है। मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ बहुत ही विचित्रप्रकार का होता है।

तात्पर्य यह है कि मोक्ष प्राप्ति हेतु कोई बाह्य प्रयत्न नहीं करना पड़ता; बल्कि सहज द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करना तथा उसी में स्थिरता करना ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है, प्रयत्न है, पुरुषार्थ है।

प्रश्न : सहज द्रव्यस्वभाव की दृष्टि अर्थात् आत्मप्राप्ति पुरुषार्थ से होती है या काललब्धि से ?

उत्तर : वास्तव में पुरुषार्थ से ही होती है। आत्मप्राप्ति कहें या सम्यग्दर्शन ह्न दोनों एक ही बात है।

यद्यपि समयसार के कलश टीकाकार पाण्डे राजमलजी तो चौथे कलश की टीका में यह कहते हैं कि सम्यक्त्ववस्तु यत्नसाध्य नहीं, सहजरूप है; परन्तु वहाँ पर अन्य अपेक्षा है। वहाँ पर तो यह बताना है कि जब जीव का अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल शेष रहता है, तब ही इसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। वे स्वयं वहाँ लिखते हैं ह्न

'अनंत संसार जीव भ्रमते हुये जाता है, वे संसारीजीव एक भव्य राशी है, एक अभव्य राशी है। उसमें अभव्य राशी जीव त्रिकाल ही मोक्ष जाने के अधिकारी नहीं हैं। भव्य जीवों में कितने ही जीव मोक्ष जानेयोग्य हैं। उनके मोक्ष पहुँचने का काल परिमाण है। विवरण ह्न यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा ह्न ऐसी नोंद केवलज्ञान में है। उस जीव का संसार में भ्रमते-भ्रमते जब अर्द्धपुद्गलपरावर्तन मात्र काल शेष रहता है, तब वह सम्यक्त्व उपजने योग्य है। इसका नाम काललब्धि है।

यद्यपि सम्यक्त्वरूप जीवद्रव्य परिणमता है, तथापि काललब्धि के बिना करोड़ों उपाय किये जायें तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमने योग्य नहीं है ह्न ऐसा नियम है। इससे जानना कि सम्यक्त्ववस्तु यत्नसाध्य नहीं, सहजरूप है।'

आत्महित करना है तो इन प्रतिकूल संयोगों में ही करना होगा। इन संयोगों को हटाना अपने हाथ की बात तो है नहीं। हाँ ! हम चाहें तो इन संयोगों पर से अपना लक्ष्य हटा सकते हैं, दृष्टि हटा सकते हैं। यही एक उपाय है आत्महित करने का, अन्य कोई उपाय नहीं। **ह्न सत्य की खोज, पृष्ठ-215**

40 वें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन

देवलाली (नासिक-महा.) : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित एवं पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली द्वारा दिनांक 9 मई से 26 मई, 06 तक आयोजित 40 वें श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन समारोह मंगलवार, दिनांक 9 मई, 06 को श्री मुकुंदभाई खारा की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुआ।

झण्डारोहण एवं शिविर का उद्घाटन श्री कान्तिभाई विपुलभाई हितेनभाई मोटाणी परिवार, मुम्बई के करकमलों से किया गया।

उद्घाटन सभा के मुख्यअतिथि श्री रमेशजी मंगलजी मेहता, मुम्बई एवं विशिष्ट अतिथि श्री अनंतभाई सेठ मुम्बई, श्री सुमनभाई दोशी राजकोट, श्री जुगराजजी कासलीवाल कोलकाता एवं श्री इन्द्रजीतजी गंगवाल इन्दौर आदि मंचासीन थे।

उद्घाटन समारोह में श्रीमान मुकुन्दभाई खारा ने आगन्तुक विद्वद्गण एवं अतिथियों का स्वागत करते हुये पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली का परिचय दिया तथा यह शिविर देवलाली में छठवीं बार लगाने की स्वीकृति प्रदान करने के लिये पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का आभार व्यक्त किया। शिविर का महत्त्व बताते हुए उन्होंने इसे तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी व प्रकाशन मंत्री ब्र. यशपालजी जैन ने ट्रस्ट की गतिविधियों का परिचय देते हुये दक्षिण भारत में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा प्रचारित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की भरपूर संभावना को बताते हुये वहाँ चल रहे विभिन्न कार्यों का परिचय दिया।

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने शिविरों के मूल प्रेरणास्रोत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के योगदान का स्मरण करते हुये शिविर का परिचय एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला। आपके अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री एवं श्री अनन्तभाई सेठ का भी उद्बोधन प्राप्त हुआ।

उपर्युक्त अतिथि एवं विद्वानों के साथ ब्र. हेमचन्दजी'हेम' देवलाली, पण्डित जवाहरलालजी बड़कुल विदिशा, पण्डित दिनेशभाई शहा मुम्बई, पण्डित कोमलचन्दजी द्रोणगिरि, पण्डित कमलकुमारजी पिड़ावा, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, श्रीमती उज्ज्वलाजी शहा मुम्बई आदि विद्वान व अध्यापकगण भी मंचासीन थे।

इस अवसर पर डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया द्वारा बालकों के लिये लिखी हुई 'जैन जी. के. (भाग - 1 व 2)' का विमोचन किया गया। सभा का संचालन पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री एवं आभार प्रदर्शन श्री सुमनभाई दोशी ने किया।

उद्घाटन समारोह से पूर्व प्रात: मंगल कलश शोभायात्रा पूर्वक मानस्तंभ के समक्ष देव-शास्त्र-गुरु पूजन हुई तथा गुरुदेवश्री के सी. डी. प्रवचन का लाभ मिला।

शिविर के विस्तृत समाचार आगामी अंक में प्रकाशित किये जायेंगे। ●

उपकार दिवस सानन्द सम्पन्न

1. **देवलाली (नासिक-महा.) :** यहाँ पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 25 से 29 अप्रैल, 2006 तक आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की 117 वीं जन्मजयंती उत्साहपूर्वक मनायी गई।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के अलिंगग्रहण के बोलों पर मार्मिक प्रवचन हुये। आपके अलावा पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, पण्डित हेमचन्दजी 'हेम' एवं पण्डित कोमलचन्दजी के भी प्रवचनों का लाभ मिला।

इस प्रसंग पर श्रीमती ज्योत्स्नाबेन महेन्द्रभाई भालाणी परिवार, मुम्बई द्वारा श्री भक्तामर मण्डल विधान का आयोजन किया गया। विधि-विधान के समस्त कार्य विधानाचार्य पण्डित मधुकरजी जलगाँव, पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर एवं पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर ने कराये। समस्त कार्यक्रम बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

2. **बाँसवाड़ा (राज.) :** यहाँ निर्माणाधीन तीर्थ **ध्रुवधाम** में दिनांक 28 अप्रैल को आचार्य अकंलक शिक्षण संस्थान के छात्रों को गुरुदेवश्री के जीवन परिचय की वी. सी. डी. दिखाई गई तथा दिनांक 29 अप्रैल को गुरुदेवश्री के जीवन चरित्र पर आयोजित गोष्ठी में छात्रों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। ●

आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सम्पन्न

चिंतामणी पार्श्वनाथ (भिलोड़ा -गुज.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चिंतामणी पार्श्वनाथ में स्व. शाह कोकिलाबेन अरविंदकुमार चोरिवाड़ परिवार के आयोजकत्व में रायदेश दिगम्बर जैन आध्यात्मिक व्याख्यानमाला का आठवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर दिनांक 25 से 30 अप्रैल, 2006 तक सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रात: एवं दोपहर में ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर द्वारा गुणस्थान विवेचन एवं पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, जयपुर द्वारा द्रव्यसंग्रह की सारगर्भित व सरल भाषा में कक्षा ली गई। प्रतिदिन प्रात: एवं रात्रि में ब्र. कैलाशचन्दजी 'अचल' ललितपुर के समयसार एवं मोक्षमार्ग प्रकाशक पर मार्मिक प्रवचन हुये। प्रौढ़कक्षा पण्डित अश्विनभाई जैन, मुम्बई ने ली।

इस अवसर पर पंचमेरू मण्डल विधान का आयोजन श्रीमती शाह कंचनबेन बाबूलाल चोरिवाड़ परिवार हस्ते मुकेशभाई द्वारा किया गया। विधानादि के कार्य, बालकक्षा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम पण्डित आशीषजी शास्त्री, टीकमगढ़ एवं पण्डित प्रयंकजी शास्त्री, रहली ने कराये।

शिविर के मध्य दिनांक 29 अप्रैल, 2006 को आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की 117 वीं जन्मजयंती हर्षोल्लासपूर्वक मनाई गयी। इस अवसर पर आयोजित सभा में समस्त विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये। शिविर के मध्य डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित अनुपम कृति **'पश्चात्ताप (खण्डकाव्य)'** का विमोचन किया गया। ●

बाल संस्कार शिक्षण-शिविरों की धूम

1. इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ साधनानगर स्थित श्री पंचबालयति एवं विहरमान बीस तीर्थंकर जिनालय में पंचम बाल संस्कार शिविर दिनांक 30 अप्रैल से 7 मई, 06 तक आयोजित हुआ।

शिविर में इन्दौर के विभिन्न उपनगरों के लगभग 874 जैन व जैनेतर बालकों ने भाग लिया; जिसमें 19 विभिन्न धार्मिक कक्षाओं के माध्यम से उक्त छात्रों को धार्मिक व नैतिक संस्कारों के साथ जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों से संस्कारित किया गया।

शिविर में पण्डित गुलाबचन्दजी बीना, विदुषी राजकुमारीजी जैन जयपुर, पण्डित अशोकजी मांगूलकर राघौगढ़, पण्डित रीतेशजी शास्त्री सनावद, पण्डित विक्रान्तजी पाटनी झालरापाटन, पण्डित कमलेशजी शास्त्री बण्डा, पण्डित आकाशजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित अंचलप्रकाशजी शास्त्री ललितपुर, पण्डित सचिनजी शास्त्री जबेरा, पण्डित अंकुरजी शास्त्री भोपाल, पण्डित रोहनजी रोटे कोल्हापुर, पण्डित विवेकजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित सन्मतिजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित धीरजजी शास्त्री जबेरा, पण्डित अमितजी शास्त्री गुना, पण्डित विनयजी शास्त्री बून्दी, पण्डित प्रसन्नजी शेटे कोल्हापुर, पण्डित रवीन्द्रजी महाजन परभणी, पण्डित अभिषेकजी शास्त्री केलवाड़ा, पण्डित अंकितजी शास्त्री कोलारस, पण्डित नीतेशजी आरोन, पण्डित अनुरागजी भगवाँ के अतिरिक्त स्थानीय विद्वानों में पण्डित सुशीलकुमारजी, पण्डित तेजकुमारजी गंगवाल, पण्डित दिलीपजी बाकलीवाल, पण्डित सौरभजी शास्त्री, पण्डित गौरवजी शास्त्री आदि 27 विद्वानों के माध्यम से सम्पूर्ण कक्षायें संचालित की गई। स्थानीय विद्वानों द्वारा प्रौढ़ों के लिये भी पृथक शिक्षण-कक्षायें ली गई।

सायंकालीन समय में इन्दौर के विभिन्न 8 जिनालयों में कक्षा व प्रवचनों का आयोजन हुआ। अन्तिम दिन छात्रों की परीक्षा ली गई; जिसका परीणाम शत-प्रतिशत रहा। उत्तीर्ण समस्त छात्रों को समाजसेवी श्री आर. के. जैन द्वारा पुरस्कार वितरित किये गये।

दिनांक 7 मई को समापन समारोह में श्री मनोहरलालजी काला ने शिविर के संबंध जानकारी दी। आभार प्रदर्शन श्री तेजकुमारजी गंगवाल ने किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम शिविर के प्रमुख संयोजक श्री विजयकुमारजी बड़जात्या के निर्देशन में सम्पन्न हुये। **ह्न राजेन्द्र पहाड़िया**

2. देवलाली (महा.) : यहाँ पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट में प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश पर मुम्बई के बालकों के लिये आयोजित होनेवाले शिक्षण-शिविर की श्रृखंला का अष्टम बाल संस्कार शिविर इस वर्ष दिनांक 30 अप्रैल से 7 मई, 2006 तक आयोजित किया गया।

शिविर में पण्डित बाबूभाईजी मेहता फतेपुर, पण्डित कोमलचन्दजी द्रोणगिरि, पण्डित ऋषभजी शास्त्री अहमदाबाद, पण्डित उदयमणीजी शास्त्री अहमदाबाद, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित स्वानुभवजी शास्त्री मुम्बई, पण्डित अभयजी शास्त्री खैरागढ़, पण्डित आशीषजी शास्त्री टीकमगढ़, ब्र. चेतनाबेन, कु. जयतिजी एवं श्रीमती स्वस्तिजी जैन जबलपुर द्वारा बालकों को विभिन्न कक्षाओं के माध्यम से जैनदर्शन के मूलतत्त्वों का ज्ञान कराया गया।

प्रतिदिन गुरुदेवश्री के सी. डी. प्रवचन हुये। रात्रि में पण्डित विरागजी शास्त्री द्वारा संगीतमय जैन कथा का प्रस्तुतिकरण किया गया तथा श्रीमती कंकुबेन रिखबदास शाह परिवार, दादर-मुम्बई की ओर से आचार्य कुन्दकुन्द सर्वोदय फाउण्डेशन द्वारा निर्मित 'हम होंगे ज्ञानवान' वी. सी. डी का विमोचन कर प्रत्येक छात्र को भेंट दी गई।

3. दाहोद (गुज.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल एवं ज्ञानसुधा मण्डल दाहोद के तत्त्वावधान में दिनांक 22 से 29 अप्रैल, 2006 तक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित चैतन्यकुमारजी शास्त्री कोटा के प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ तथा ब्र. पुष्पलताजी झांझरी, ब्र. ज्ञानधाराजी झांझरी, ब्र. समताजी झांझरी उज्जैन एवं डॉ. ममताजी जैन बाँसवाड़ा द्वारा बाल-युवा व महिला वर्ग की कक्षायें संचालित की गई।

दिनांक 29 अप्रैल को गुरुदेवश्री की 117 वीं जन्मजयंती के अवसर पर 117 ध्वजायें लेकर जिनेन्द्र शोभायात्रा निकाली गई। सम्पूर्ण शिविर पण्डित राकेशजी शास्त्री एवं पण्डित वीरेन्द्रजी शास्त्री के संयोजकत्व में सम्पन्न हुआ। **ह्न राकेश दोशी**

ज्ञातव्य है कि खण्डवा, ग्वालियर, हिंगोली, नागपुर, कोल्हापुर, उदयपुर, भिण्ड, कोटा, रावतभाटा आदि स्थानों पर भी बाल संस्कार शिविरों का आयोजन किया जा रहा है।

ब्र. यशपालजी द्वारा धर्मप्रभावना

मजले (कोल्हापुर-महा.) : यहाँ श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर के पास स्वाध्याय भवन में दिनांक 2 से 6 मई, 06 तक ब्र. यशपालजी जैन के दोपहर में छहढ़ाला एवं रात्रि में जिनधर्मप्रवेशिका पर मार्मिक प्रवचन हुये। आपके अतिरिक्त पण्डित मिलिंदजी केटकाले कोल्हापुर द्वारा दोपहर एवं सायंकाल बालकक्षा ली गई। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी सम्पन्न हुये।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न

सत्तूर (धारवाड़-कर्ना.) : श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित बाहुबलीजी भोसगे विगत 3-4 वर्षों से यहाँ के गाँववालों को मन्दिर निर्माण हेतु प्रेरित कर रहे थे; जिसके फलस्वरूप स्थानीय दिगम्बर जैन समाज के तत्त्वावधान एवं 108 पूज्यश्री सुखसागरजी महाराज के सान्निध्य में दिनांक 9 से 13 अप्रैल, 2006 तक श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव अनेक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित रायमल्लजी द्वारा रचित 'मन्दिर निर्माण का स्वरूप एवं उसका फल'कृति का श्री भोसगेजी कृत कन्नड अनुवाद का भी विमोचन किया गया। पंचकल्याणक के पश्चात् गाँव की समाज ने यह भी निर्णय लिया कि दशलक्षण महापर्व में प्रतिवर्ष श्री टोडरमल महाविद्यालय, जयपुर के विद्वान को प्रवचनार्थ आमंत्रित करेंगे ।

मंदिर निर्माण एवं सम्पूर्ण महोत्सव में धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्रजी हेगड़े की बहिन श्रीमती पद्मलता निरंजनकुमारजी का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। साथ ही स्थानीय जैन समाज के अध्यक्ष श्री नागप्पा चिणगीजी ने भी दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को सफल बनाया।

शिखर शिलान्यास महोत्सव सम्पन्न

गजपंथा (महा.) : श्री सप्त बलभद्रादि अनेक मुनिराजों की निर्वाणस्थली गजपंथा सिद्धक्षेत्र पर दिनांक 29 व 30 अप्रैल, 06 को वासना चौधरी ग्राम (गुज.) के मुमुक्षु भाईयों द्वारा निर्मित श्री विमलनाथ जैन मन्दिर का 6 वाँ वार्षिकोत्सव व शिखर शिलान्यास महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर 29 अप्रैल को प्रात: शोभायात्रा पूर्वक पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। दोपहर में ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर, गजपंथा एवं पण्डित नीलेशजी जैन, मुम्बई तथा रात्रि में पण्डित मधुकरजी जैन, जलगाँव एवं ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के व्याख्यान का लाभ मिला।

30 अप्रैल को प्रात: पूजनोपरान्त शिलान्यास सभा में ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री ने शिलान्यास के प्रयोजन व महत्त्व पर प्रकाश डाला। पश्चात् शिलान्यासकर्त्ता श्री वसंतलालजी चंदुलालजी शाह परिवार एवं श्री नाथालालजी वेणीचन्दजी शाह परिवार मुम्बई के करकमलों से शिलान्यास-विधि सम्पन्न हुई। श्री जयंतीभाई दोशी परिवार मुम्बई द्वारा नवनिर्मित आत्मविज्ञान संग्रहालय का उद्घाटन किया गया।

विधि-विधानादि के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित विरागजी जबलपुर, पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल एवं पण्डित निखिलजी, कोतमा ने सम्पन्न कराये।

वैराग्य समाचार ....

1. **वसगड़े (कोल्हापुर-महा.) निवासी** पण्डित शांतीनाथजी पाटील का दिनांक 7 मई, 2006 को प्रात: दुर्घटनाग्रस्त होने से आकस्मिक देहावसान हो गया। जिसके समाचार सुनकर समस्त स्वाध्यायप्रेमियों में शोक की लहर फैल गयी।

आप अत्यन्त स्वाध्यायी एवं सरल व्यक्तित्व के धनी थे। विगत 36 वर्षों से आप स्थानीय जैन मन्दिर में प्रतिदिन प्रवचन करते थे तथा श्री सर्वोदय स्वाध्याय समिति, कोल्हापुर के प्राणभूत कार्यकर्ता थे। तत्त्वप्रचार-प्रसार हेतु भविष्य में अनेक कार्य करने की आपकी प्रबल भावना थी। इसी के फलस्वरूप आपके सुपुत्र पण्डित कीर्तिकुमारजी पाटील वर्तमान में महाविद्यालय की शास्त्री कक्षा में अध्ययनरत है।

2. **नई दिल्ली निवासी** श्री महावीरप्रसादजी जैन सर्राफ का दिनांक 27 मार्च 2006 को शान्तपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया है। जैन व जैनेतर समाज में आपको शाकाहार प्रचारक के रुप में जाना जाता था। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान को 501/- रुपये प्राप्त हुये है।

3. **मुम्बई निवासी** श्री शांतीलालजी मिठालालजी पंचोली दाहोद का 82 वर्ष की आयु में दिनांक 2 अप्रैल, 2006 को देहावसान हो गया। आप अत्यंत धर्मप्रेमी व स्वाध्यायी पुरुष थे। देवलाली पंचकल्याणक में आप को माता-पिता बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो ह्न यही भावना ! **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**